स्वस्थ जनतान्त्रिक मूल्यों की तलाश में भटकता भारतीय लोकतन्त्र

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव,

एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ

शोध सारांश

आज के भारत में अधिकतर राज्यों में धर्म एवं जाति के नाम पर सरकारों का निर्माण हो रहा है। देश की बेरोजगारी, गरीबी, प्रदूषण, सामाजिक असमानता, दहेज प्रथा, उत्तम स्वास्थ्य, बाल विवाह, बाल श्रम, निरक्षरता की समाप्ति, भारतीय खेलों का गिरता स्तर आदि महत्वपूर्ण मुद्दे भारतीय राजनीतिक दलों की कार्य प्रणाली में महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखते हैं। भारतीय लोकतंत्र में आम आदमी की साझेदारी कहीं न कहीं बाधित हो रही है क्योंकि वह भयमुक्त नहीं है। भयमुक्त समाज में सामान्य आदमी किसी भय, लालच, आतंक, प्रलोभन से दूर रहकर उसकी वैचारिक स्वतंत्रता और उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता उसे स्वतः ही राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ देती है। जो गरीब है, जो पिछड़ा है। वह प्रभावशाली लोगों की विरासत से आज भी मुक्त नहीं हो पाया है। इसलिये उसकी अभिव्यक्ति राजनीति की मुख्यधारा को नहीं स्वीकार कर सकी, जिससे लोकतांत्रिक संस्कृति की जड़ें कमजोर होती जा रही हैं। जिस तरह मानव शरीर रीढ़ के आधार पर चलता है उसी तरह लोकतंत्र चुनाव के आधार पर चलता है। इस अर्थ में चुनाव लोकतंत्र की रीढ़ है। चुनाव का लक्ष्य होता है–सही काम के लिये सही व्यक्तियों का चयन। वर्तमान की चुनाव प्रक्रिया को देखकर लगता है कि वह मूल लक्ष्य से विस्मृत हो गया है और जैसे–तैसे सत्ता हथियाना चुनाव का लक्ष्य बन गया। लोकतंत्र सबसे दुर्बल शासन–तंत्र है, यदि नेता और जनता सही नहीं हैं। लोकतंत्र में लिखने, बोलने और सोचने की स्वतंत्रता है, पर इसका अर्थ यह तो नहीं है कि व्यक्ति उच्छृंखल हो जाये लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को सत्ता के सिंहासन पर बैठने का अधिकार है।

Key Words- *स्वस्थ जनतान्त्रिक मूल्य,भारतीय लोकतन्त्र,नागरिक समाज,जनभागीदारी।*

भारत में नागरिक समाज का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। ये आज आधुनिक राज्यों में भी पाया जाता है। प्राचीन समय में यह दूसरे रूप जाति पंचायत, ग्राम पंचायत आदि के रूप में शासन से स्वतंत्र दिखायी पड़ता था। आज सिविल सोसाइटी भी राज्य से अलग स्वतंत्र कर्ता के रूप में दिखायी पड़ती है। भारतीय लोकतंत्र अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधि लोकतन्त्र है। जिसमें जनता शासन में सीधे भाग न लेकर अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से भाग लेती है। इसके जनक बेन्थम माने जाते हैं, जिन्होंने एक व्यक्ति और एक वोट का सिद्धान्त तथा "अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख" का विचार दिया। लोकतन्त्र की प्रकृति का निर्धारण राजनीतिक लोकतंत्र, सामाजिक लोकतंत्र एवं आर्थिक लोकतंत्र के संगठित एवं सन्तुलित विकास की अवस्थाओं या स्थितियों से निर्धारित होता है। यदि राजनीतिक व्यवस्था,सामाजिक–आर्थिक लोकतन्त्र का विकास करने में सफल राजनीतिक लोकतंत्र के निर्माण में आधारभूत स्तम्भ का कार्य करती है। इस विचार का स्पष्टीकरण हमें पंडित नेहरू जी के वाक्यांश में मिलता है, जो इस

प्रकार है, "भूतकाल में लोकतंत्र को राजनीतिक लोकतंत्र के रूप में ही पहचाना गया। जिसमें मोटे तौर से एक व्यक्ति का एक मत होता है किन्तु मत का उस व्यक्ति के लिए कोई महत्व नहीं होता जो निर्धन और निर्बल है या ऐसे व्यक्ति के लिए जो भूखा है और भूख से मर रहा है। राजनीतिक लोकतंत्र अपने आपमें पर्याप्त नहीं है। उसका आर्थिक लोकतंत्र और समानता में धीरे–धीरे वृद्धि करने के लिए और जीवन की सुख–सुविधाओं को दूसरों तक पहुँचाने के लिए तथा सभी असमानताओं को हटाने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। अर्थात् राजनीतिक लोकतंत्र एक साधन के रूप में आर्थिक–सामाजिक लोकतंत्र की प्राप्ति के लिए कार्य करती है। इसी बात को डॉ0 राधाकृष्णन जी ने इस प्रकार कहा था कि "जो गरीब लोग इधर–उधर भटक रहे हैं, जिनके पास कोई काम नहीं है जिन्हें कोई मजदूरी नहीं मिलती और जो भूख से मर रहे हैं, जो निरंतर कचोटने वाली गरीबी के शिकार हैं वे संविधान या उसकी विधि पर गर्व नहीं कर सकते हैं।"

शासन या सरकार में जनभागीदारी सुनिश्चित करने के लिए जनता को क्रान्ति का सहारा लेना पड़ा। कहीं पर यह क्रांति हिंसक हुई और कहीं पर यह अहिंसक हुई। लोकतन्त्र को स्थापित करने की दिशा में पहली लहर सन् 1776 ई. की अमेरिकी क्रांति और सन् 1789 ई.की फ्राँसीसी क्रांति से मानी जाती है। हालाँकि इसके पहले हुई सन् 1688 ई.की गौरवपूर्ण क्रांति भी लोकतंत्र स्थापित करने की दिशा में मील का पत्थर साबित हुई जिसके द्वारा निरंकुश राजतन्त्र की समाप्ति करके संवैधानिक राजतन्त्र स्थापित हुआ और कई लोकतांत्रिक परम्पराओं की शुरूआत हुई। लोकतंत्र की इस प्रथम लहर के द्वारा 18वीं व 19वीं शताब्दी में विश्व में लोकतन्त्र की स्थापना की शुरूआत हुई। यूरोप और अमेरिका से निरंकुश शासन प्रणालियों की समाप्ति होने लगी और इसके साथ लोकतांत्रिक सरकारों की नींव पड़ी। लोकतन्त्र की द्वितीय लहर द्वितीय विश्व युद्ध (1945ई0) की समाप्ति के बाद आयी। जब विश्व से औपनिवेशिक दासता की समाप्ति हुई और तृतीय विश्व के अधिकांश देशों में आजादी की नई सुबह की शुरूआत हुई। इसी लहर में भारत (1947), श्रीलंका (1948) और इण्डोनेशिया जैसे अनेक देशों में लोकतन्त्र की आधारशिला रखी गयी। लोकतन्त्र की तीसरी लहर शीतयुद्ध की समाप्ति (1990) के बाद आयीं। जब विश्व से साम्यवादी शासन प्रणाली के पुरोधा के रूप में सोवियत संघ का विघटन हो गया और इससे मुक्त हुये देशों में लोकतन्त्र की स्थापना हुई। सोवियत संघ के प्रतिद्वन्द्वी गुट पूँजीवादी देश अमेरिका ने साम्यवादी छाया से मुक्त हुये देशों को सहायता देकर लोकतन्त्र का प्रसार किया और अधिकांश पूर्वी यूरोप के देशों में लोकतन्त्र स्थापित हुआ।

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में पहली गठबन्धन सरकार का उदभव प्रथम आम चुनाव सन् 1952 ई.से लेकर सन् 2014 ई. का इतिहास गवाह है कि भारत में लोकतांत्रिक प्रणाली अवश्य विद्यमान रही है किन्तु कालावशेष में यह अपने स्वरूप बदलता रही है। भारत को सन् 1947 ई. में स्वतंत्रता प्राप्त हुई,अंग्रेजों ने सत्ता लोकतांत्रिक ढंग से चुनी गई संस्था को प्रदान की, वह सत्ता थी, संविधान सभा, जिसका निर्वाचन हुआ था। भारत में लोकतन्त्र की संसदीय परम्परा को चुना गया, जिसका तात्पर्य था कि जनतंत्र को बाकायदा स्थापित करना, जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों द्वारा विधायिका व कार्यपालिका का गठन तथा जनता को उन प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार। न्यायपालिका का गठन संविधान की रक्षा के लिये किया गया ताकि जनता के मौलिक–अधिकारों की रक्षा होती रहे। भारतीय लोकतन्त्र अत्यन्त समृद्ध रहा है, जहाँ विश्व के विभिन्न देशों में विशेषतया भारत के पड़ोसी देशों में लोकतन्त्र ध्वस्त हो चुका है, वहीं भारत में लोकतन्त्र सफलतापूर्वक अभी भी कार्य

कर रहा है। इस सन्दर्भ में जेम्स मैनेर ने लिखा है, कि पिछले पच्चीस–तीस वर्षों में दो धाराओं ने भारत की राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित किया है,–जागृति और स्खलन। जागृति से समाज के लगभग सभी सामाजिक वर्गों गरीब–अमीर,सम्पन्न विपन्न में खुली मुक्त,प्रतिनिध्यात्मक राजनीतिक समझ का निरन्तर विकास होता रहा है। इसके साथ ही साथ यह चेतना बढ़ी है कि राजनीतिज्ञों का किये गये वायदो का पालन करना चाहिए, संसाधनों के लिए बढ़ती भूख और आग्रह जन्म लेते रहे हैं। गरीब मतदाता अब इस बात की स्वीकृति नहीं देते कि भूमि पति बताये कि उन्हें वोट कैसे और किसे डालना चाहिए। इस निरन्तर बढ़ती चेतना ने अनेक दबाव समूहों को सक्रिय किया है, जो अपने अस्तित्व की पहचान बना चुके हैं और प्रतियोगिता और संघर्षण में सक्रियता से भाग लेते है। राजनीतिक चेतना से भारत सच्चा लोकतन्त्र बन पाया है।

अपने अनेक गुणों और खूबियों के रहते हुए भी भारतीय लोकतंत्र में इतनी कमियाँ हैं कि यदि मतदाता शिक्षित, जागरूक और सतर्क न हो तो चतुर लोग बहकाकर उनका मत झपट और छीन ही नहीं लेते हैं बल्कि लाभ भी वही लोग उठाते हैं और प्रजाजनों का हित उपेक्षित पड़ा रहता है। लोकतंत्र का लाभ उठाने और उसको जीवित रखने के लिए मतदाता को दूरदर्शी देशभक्त और उपयुक्त निर्णय करने में समर्थ होना चाहिए अन्यथा यह शासन पद्धति स्वार्थी के निहित स्वार्थ पूरे करते रहने का साधन मात्र रह जाती है तथा प्रजाजन कष्ट पीड़ित और पिछड़े ही बने पड़े रहते हैं। प्लेटो ने इसी आधार पर लोकतंत्र की निंदा की। जनसाधारण इतने शिक्षित नहीं होते हैं कि वे ''सर्वोत्तम शासकों और सबसे बुद्धिमत्तापूर्ण नीतियों'' का चयन कर सकें। प्रजातंत्र की सफलता का आधार मतदाता की देशभक्ति और दूरदर्शिता पर निर्भर करता है। यह तत्व जनमानस में जितने अधिक विकसित होंगे उसी अनुपात से वे शासन तंत्र सम्भालने के लिए अधिक उपयुक्त व्यक्ति चुनने में सफल हो सकेंगे। अधिक सही, अधिक सुयोग्य हाथों में शासनतंत्र रहे तो प्रजाजन उस सरकार के अन्तर्गत सुख–शांति और प्रगति का लाभ प्राप्त करेंगे। इसके विपरीत यदि अवांछनीय तत्वों ने शासन पर कब्जा कर लिया तो वे उसका उपयोग व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए अपने गुट के लिए करेंगे और उस दुरूपयोग के कारण जो अवांछनीय–श्रृंखला बढ़ेगी,उसकी चपेट में सरकारी कर्मचारी भी आयेंगे। उनका स्तर भी गिरेगा और इस गिरावट का अंतिम दुष्परिणाम जनता को ही भुगतना पड़ेगा। इसलिए जहा भी प्रजातंत्रात्मक शासन व्यवस्था है वहॉ सबसे प्रथम आवश्यकता इस बात की पड़ती है कि वहाँ का मतदाता इतना सुयोग्य बन जाय कि अपने मत का राष्ट्र के भविष्य को बनाने–बिगाड़ने की चाबी के रूप में राष्ट्रीय पवित्र धरोहर के रूप में केवल उचित आधार पर ही उपयोग करे। हर नागरिक के मन में यह बात कूट–कूट कर भरी होनी चाहिए कि उसके हाथ में समस्त राष्ट्र को सुशासन देने की चाबी मतदान के अधिकार के रूप में दी गयी है। उससे वह द्वार खुलता है जिसमें होकर कोई राजसिंहासन पर विराजमान होता है। किसको उस द्वार में प्रवेश करने दिया जाय, किसको न करने दिया जाय? किसके लिए दरवाजा खोला जाय किसके लिए बन्द रखा जाय? यह निर्णय करना और उसके अनुरूप कदम उठाना पूर्णतया प्रजातांत्रिक देश के प्रत्येक नागरिक के हाथ में रहता है। कुँजी उसी मतदाता के हाथ में रहती है। सार और मर्म का केन्द्र मतदाता ही है। राष्ट्र के भविष्य का विकास और विनाश–का प्रगति और अवनति का सारा आधार इसी बिन्दु पर केन्द्रित रहता है कि प्रजाजन कितना अपने मतदान का महत्व समझते हैं और किस तरह उसका उपयोग करते हैं।

भारत का संविधान न केवल राजनीतिक बल्कि सामाजिक लोकतंत्र का भी मार्ग प्रशस्त करता है। इस विचार को भारतीय संविधान के

पिता डॉ0 आम्बेडकर ने संविधान सभा में अपने समापन भाषण में कहा था कि 'यदि राजनीतिक लोकतंत्र का आधार सामाजिक लोकतंत्र का आशय नष्ट हो जायेगा।'तो कुछ भी शेष नहीं बचेगा। यहाँ सामाजिक लोकतंत्र का आशय है, वह जीवन पद्धति जो स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुता को मान्यता देती है। वे इस त्रिमूर्ति का एकीकरण है। इस अर्थ में यदि एक को हम दूसरे से अलग कर दे तो लोकतंत्र का आशय निष्फल हो जायेगा। स्वतंत्रता को समानता से अलग नहीं किया जा सकता, समानता को स्वतंत्रता से पृथक नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार स्वतंत्रता और समानता को बन्धुत्व से विलय नहीं किया जा सकता। इससे स्पष्ट होता है कि लोकतंत्र के प्रत्येक आधार में स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व व्यवस्थाओं के सफल संरचना का अवयव है, इसके बिना कोई भी व्यवस्था अपने लोकतांत्रिक स्परूप को बनाए नहीं रह सकती। लेकिन वर्तमान के भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में बढ़ते विकृत सेक्युलरवाद, अपराधीकरण,सत्ता पर बाहुबलियों का अधिकार, परिवारवाद, साधन–साध्य की अपवित्रता और बढ़ते भ्रष्टाचार ने राजनीति के कल्याणकारी स्वरूप के ह्रास ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि अन्य सामाजिक व्यवस्थाओं का नेतृत्व करने वाली राजनीतिक व्यवस्था में ही स्वतन्त्रता आर्थिक–सामाजिक लोकतन्त्र का स्वस्थ्य विकास होना संभव नहीं है। जो हमें भारत में बढ़ते नक्सलवाद (200 से अधिक जिलों में) श्वेत वसन अपराध आर्थिक विकास के दुष्परिणाम के रूप बढ़ती पर्यावरण की समस्याएं राजनीतिक अस्थिरता, योजनाओं–परियोजनाओं के पूर्ण सफलता में कमियाँ, सहकारी एवं कुटीर उद्योगों की दुर्दशा, आर्थिक विषमता को बढ़ती खाई, संस्थाओं में बढ़ती अकुशलता के रूप में प्रस्तुत है। हमारी उद्देशिका में 'लोकतंत्रात्मक गणराज्य' का जो चित्र है, वह राजनैतिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टिकोण से है। दूसरे शब्दों में न केवल शासन में लोकतंत्र होगा बल्कि समाज भी लोकतंत्रात्मक होगा। जिसमें न्याय, स्वतंत्रता, समता और बन्धुता की भावना होगी। राज्य नीति–निर्देशक (भाग चार) के अनुसार आर्थिक न्याय का दृष्टिकोण, राष्ट्रीय धन और संपत्ति स्रोतों में अनेक गुना वृद्धि करके इनका सभी लोगों में साम्यापूर्ण विवरण करना है, जो उत्पादन में अपना योगदान करते हैं, तथा साथ ही अकुशल उत्पादकों का कुशल उत्पादक बनने की सुविधा प्रदान करना है। अर्थात् समावेशी विकास एवं सतत् विकास हमारी आर्थिक विकास की धुरी होनी चाहिए।

आज वर्तमान संसदीय व्यवस्था की साख दाँव पर आ गयी है। जन प्रतिनिधि जन आक्रोश को देख असहज है। एक तरफ जनभावना है तो दूसरी तरफ दलीय अनुशासन, जनप्रतिनिधि होने का विशेष गर्व उनको सही दिशा चुनने में बाधा उत्पन्न कर रहा है। आज बदले वातावरण में एक नया नेतृत्व , नयी ऊर्जा का संचार हो रहा है जो पहले को चुनौती दे रहा है। यह आम लोगों का आक्रोश है जो उन्हें जन विरोधी कारपोरेट समर्थक सरकार के विरूद्ध सक्रिय कर रहा है। उक्त आन्दोलन में धर्म, जाति, वर्ग, क्षेत्र की सीमायें टूट गई हैं। इस आन्दोलन को मिल रहा समर्थन इस बात का परिचायक है कि लोग इसे अपने दैनिक जीवन से जोड़कर देख रहे है। छोटे स्तर पर भ्रष्ट गतिविधियों में लिप्त व्यक्ति भी ऊपर से बन रहे दबाव एवं दैनिक जीवन के अन्य मांगों से परेशान है, वह अपनी छोटी सी कमाई अन्य अपने कार्यों के लिए खर्च करता है। अन्ना की निचली ब्यूरोक्रेसी को शामिल करने की मांग भी लोगों की इसी मनोदशा के अनुरूप हैं भूमि अधिग्रहण , अवैध खनन जैसे मुद्दे भी लोगों की दुखती रग पर अन्ना के हाथ की तरह है। अपने मंच से इन मुद्दों को उठाकर वह जन सामान्य से न केवल जुड़ रहे हैं वरन अपार जन समर्थन प्राप्त कर रहे हैं। आज सरकार आम जनता के लिए नहीं वरन कारपोरेट हाउस के लिए कार्य करती हुई दिखाई पड़ रही है। पिछले कुछ वर्षों

में विकास , तरक्की आम लोगों की अपेक्षा कुछ उद्यमियों अथवा ''मिडिलमैन'' की है। यही कारण है कि 2005 में अरबपतियों की संख्या 8 से बढ़कर अगले 8 वर्षों में 50 तक जा चुकी है।एक तरफ जहाँ ऐसी तरक्की दिख रही है । वही सरकारी आंकड़े भुखमरी और गरीबी बढ़ने के संकेत दे रही हैं। ये आँकड़े सम्पूर्ण तिलस्म को स्पष्ट कर दे रहे है। हाल में राडिया टेप ने कारपोरेट हाउस एवं बड़े राजनीतिकों के गठजोड़ को स्पष्ट कर दिया है। दि एशियन सेंटर फार हयूमन राइट्स ने सी0बी0आई0 की वार्षिक रिपोर्ट में कुछ चौकानें वाले आँकड़े स्पष्ट किये है। जहाँ उदारीकरण के दौर में भ्रष्टाचार में वृद्धि देखी जा रही है। वही सी0बी0आई0 ने भ्रष्टाचार के मामलों में तेज गिरावट के आंकड़े जारी किये । जब सर्वोच्च न्यायालय में दबाव में कामनवेल्थ घोटाला तथा टू जी स्पेक्ट्रम घोटाले सामने आए।

भारत में किसी से भी यह पूछ लिया जाय कि विधायक या सांसद बनने की काबिलियत क्या है ? तो वह भारतीय संविधान में उल्लिखित सैद्धान्तिक प्राविधानों को बाद में बताएगा लेकिन पहले यही बताएगा कि किसी नेताजी का वंशज होना, सिनेमा का कलाकार होना, किसी पुराने राजा महाराजा जो कि अंग्रेजों के पिछलग्गू रहे हों का वंशज होना, धर्म के नाम पर दंगा करा देने की क्षमता रखना, जनता को धर्मनिरपेक्ष और धर्मसापेक्ष जैसी ढंग से समझ में नही आने वाली बातें समझा कर उन्हें लगातार साम्प्रदायिक रंग में रंगे रखने की क्षमता धारित करने वाला होना, भाषा के नाम पर ज़हर बुझे शब्दों के प्रयोग से भारत की बहुभाषी जनता को बरगलाकर उत्तेजित करने की क्षमता से परिपूर्ण होना, खाते पीते लोंगों को भी यह कहकर बहकाने की योग्यता रखना कि आप तो बड़े दबे कुचले अर्थात दलित और पिछड़े हैं और फिर इनके नेतृत्व का स्वांग रचकर तथाकथित अगड़ों के साथ सांठ गांठ करके सत्ता पर कब्जा कर लेना, दलालों गुण्डों बदमाशों से मित्रता रखना या स्वयं उनमें से एक होना, कोई भी अच्छा या गन्दा से गन्दा काम करके भी अधिक से अधिक धन जुटा लेने की प्रवृत्ति रखना, जनता के चारित्रिक उत्थान के लिए लगातार भाषण देते रहना लेकिन स्वयं उपरले दर्जे का चरित्रहीन होना, अपनी जाति के विकास का मुँहजबानी ठीका लिए रहना, ऐसे ठाट बाट और ताम झाम के साथ जनता के बीच जाना कि लोग देखते ही रह जॉय, अपनी विनम्रता का घमण्ड भी विनम्रता के साथ करने की कला रखना यानि वह सब कुछ जिसे एक साथ मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भारत की जनता में से वे लोग जो ऐसी विकृतविशिष्टता से युक्त हों कि जनता उनके आगे खड़े होने के बारे में सोच भी न सके और अपने आप ही पीछे लाइन लगा ले।

इस तरह स्पष्ट है कि ऐसी योग्यता और क्षमता से युक्त विशिष्ट जन चाहे जो भी हों तथा प्रत्येक निर्वाचन के बाद भले ही बदल जाए परन्तु शासन प्रशासन की मनोवृत्ति में कोई बदलाव नहीं हो सकता। इस प्रवृत्तिधारियों का संविधान सभा ने भी खूब ध्यान रखा और संविधान में इस हेतु व्यवस्था की कि मंत्री होने के लिए यह जरुरी नही है कि व्यक्ति विशेष को जनता निर्वाचन में चुन ही ले। यदि ऐसा योग्य व्यक्ति चुनाव हार गया हो या चुनाव लड़ा भी न हो तब भी वह बिना विधायक या सांसद रहे भी छः महीने तक मंत्री रह सकता है तब तक कोई न कोई राजनीतिक तरकीब अपनाकर संवैधानिक प्राविधानों का पालन कर ही लिया जाएगा। यहाँ स्पष्टतः कहना जरुरी है कि आखिर संविधान सभा में भी जनता तो थी नहीं बल्कि जनता के प्रतिनिधि विशिष्टजन ही थे और जब उन लोगों ने कह दिया कि हम सब लोग मिलकर सम्पूर्ण जनता का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं तो जनता को मानना ही था और इन काबिल लोगों के शासन से 15 अगस्त सन् 1947 ई0 से 15 मई सन् 2014 ई0 तक जनता की प्राप्तियों पर कुछ

लिखना स्याही कागज को भ्रष्टाचार के भेंट चढ़ाना ही होगा।

बढ़ते भ्रष्टाचार ने राज्य की वैधता एवं इसकी शक्तियों पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया है। राज्य का बढ़ता कार्यक्षेत्र, आमलोगों तक पहुँच का अभाव, लोगों की बढ़ती आकांक्षा एवं जागरूकता ने ''सिविल सोसाइटी'' को प्रभावी बनाया। ऐसे में सिविल सोसाइटी वृहद समाज का प्रतिनिधित्व कर उनकी आवाज बनती है। वह जन समर्थन से जनआकांक्षा को जन आन्दोलन का रूप प्रदान करती है। सिविल सोसाइटी सजग समाज में सजग प्रहरी के रूप में भूमिका अदा करती है। वह जन समर्थन आन्दोलन, नागरिक स्वतंत्रता,न्यायपालिका के माध्यम से सरकार की जवाबदेही तय करती है और उन्हें जवाबदेह बनाती है। सिविल सोसाइटी सरकारों को न केवल जवाबदेह बनाती है वरन जागरूक लोकतंत्र को जन्म देती है। नागरिक सक्रियता ने ही सिविल सोसाइटी को जन्म दिया है और सिविल सोसाइटी ने भ्रष्टाचार,पर्यावरण,चुनाव सुधार जैसे मुद्दे आम नागरिकों को दिये। आम नागरिकों की नये मुद्दों में यह रूचि प्रतिनिधिआत्मक लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत हैं। विगत सात दशकों में भारतीय लोकतंत्र में अनेक मुद्दे उभरे। भारतीय लोकतंत्र नये चुनौतियां देख रहा है। परम्परागत समाज के मुख्य मुद्दे के रूप में जाति, धर्म, भाषा एवं क्षेत्रवाद सदैव से भारतीय लोकतंत्र के समक्ष थे परन्तु हाल के समय में भ्रष्टाचार,पर्यावरण, नक्सलवाद, महिला सशक्तीकरण नये मुद्दे के रूप में उभर रहे है। पूर्व की तरह भारतीय लोकतंत्र के समक्ष खड़ी नई चुनौतियों से निपटकर और अधिक मजबूती के साथ उभरेगा।इसे सुखद ही कहा जाएगा कि वर्तमान का नागरिक सक्रियता से उभरा नागरिक समाज (सिविल सोसाइटी) आंदोलन भारतीय लोकतन्त्र के लिए एक नई संजीवनी सिद्ध होगा।

लोकतंत्र तभी सार्थक होता है,जब लोकतंत्र की भावना को प्रमुखता दी जाए, केवल वाह्य संरचना को नहीं। इसके लिए आवश्यक है कि जनता अधिकांशतः शिक्षित (गुणवत्ता युक्त) संवेदनशील और उत्तरदायित्व की भावना से परिपूर्ण होनी चाहिए। देश में शांति और व्यवस्था का वातावरण हो, आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय की स्थापना भी आवश्यक है। सामाजिक स्तर पर विभिन्न वर्गों को विविध विशेषाधिकार न मिले हों, न किसी वर्ग को नीचा समझा जाए। लेकिन वर्तमान में भारत में शासक वर्ग के नैतिक मूल्यों के ह्रास तथा भ्रष्टाचार एवं आपराधिक मनोवृत्ति की व्यवस्था को तोड़ने के असफल प्रयास, शिक्षा व्यवस्था में लगातार गिरावट, प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन से ये सारे समाधान मात्र वैचारिक पटल पर ही रह जायेगें। वर्तमान में भारतीय समाज के बौद्धिक वर्ग अपने विलासिता पूर्ण जीवन को नहीं छोड़ने चाहते, मध्य एवं निम्न वर्ग रोजी–रोटी के चक्कर में परेशान है। शासक एवं प्रशासक वर्ग, पश्चिमी जगत के उपभोक्तावादी मनोवृत्ति से संचालित है। दूसरी तरफ करोड़ों लोग बेरोजगार (10 प्रतिशत युवा) गरीब हैं। दूसरी तरफ विश्व राजनीति को देखा जाए तो हास्यास्पद विरोधाभाष की स्थिति नजर आती है। वर्तमान विश्व जारनीति में पर्यावरणीय मित्र राजनीति की बात की जा रही है। उसके साथ–साथ प्रत्येक देश के रक्षा बजट के बढ़ते भाग तथा अत्याधिक प्राकृतिक दोहन कर अत्यधिक उत्पादन द्वारा गरीब जनसंख्या के सहायता के पीछे यही नजर आता है कि सबसे सभ्य राष्ट्रों ने भी लोकतंत्र की बहुआयामी गुणों को न तो समझा और न ही उसका विस्तार किया। अगर कोई राष्ट्र अपने प्राकृतिक संसाधनों को बचाकर दूसरे के प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन करता है तो उस राष्ट्र की जनता की संसाधन विहीन स्थिति दोहन करने वाले राष्ट्रों के लिए हिंसा (आतंकवाद) के ही रूप में व्यक्त होगी।

कभी "गाँधी जी ने गुजराती के एक गीत को लोकप्रिय बनाने की कोशिश की थी, जिसमें यह बताया गया है कि सच्चा वैष्णव वह होता है, जो दूसरों के दर्द को जानता है। आज भारत में इस तरह के उदाहरण नहीं मिलते" यह भावाभिव्यक्ति डॉ0 के0आर0 नारायणन (पूर्व राष्ट्रपति) की थी, जो उन्होंने 26 जनवरी 2000 ई0 को गणतन्त्र दिवस की पूर्व संन्ध्या में दिया था। डॉ0 नारायणन ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि....." ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में सामाजिक क्षेत्र में एक प्रकार की प्रतिक्रान्ति आ गयी है। इस बात को भुला दिया गया है, कि समाज के इस (दलित) वर्ग को ये लाभ (आरक्षण) मानवाधिकारों तथा सामाजिक न्याय के बतौर प्रदान किये गये हैं। इस अवसर पर मैं यह कहना चाहूँगा कि समाज के कमजोर वर्गों के लिए, जो उपबंध किये गये हैं, हमें उससे उबना नहीं चाहिए अन्यथा जैसा डॉ0 आम्बेडकर ने कहा था, हमारे लोकतंन्त्र की इमारत गोबर की ढेर पर बने महल के समान होगी, मैं इस बात पर जोर देना चाहूँगा कि हमें सक्रिय रहना चाहिए,निराश नही। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि लोकतंत्र की नवीन सिद्धान्त रचना के साथ यदि प्राचीन लोकतन्त्रीय व्यवस्था के ग्राह्य तत्वों को निष्पक्षता तथा पूर्ण उदारता से पालन करते हुए ग्रहण किया जाए तो पूर आशा है कि हमारा लोकतंत्र अपनी त्रुटियों को स्वयं सँभालता जाएगा तथा सुदृढ़ से सुदृढ़तम हो जाएगा।

सहायक संदर्भ ग्रन्थ

- शर्मा अशोक,भारत में लोकतंत्र और निर्वाचन– अनुसंधान एवं विशद् अध्ययन संस्थान, जयपुर, 1994.
- सिंह डॉ0 निशांत,लोकतंत्र और चुनाव सुधार–स्वप्निल सारस्वत, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, 2008.
- मिश्र विद्यानिवास, लोक और लोक का स्वर, प्रभात प्रकाशन,नई दिल्ली, संस्करण 2000
- कोठारी रजनी (सं) ,कास्ट इन इंडियन पालिटिक्स, ओरिएन्ट ब्लैक स्वान,नई दिल्ली 2010
- सिंह, महेश्वर भारतीय लोकतंत्र : समस्याएँ व समाधान– साहित्यागार, प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड, जयपुर, 1999
- संधसु, ज्ञान सिंह, राजनीति सिद्धान्त– हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1983
- गाबा ओम् प्रकाश गाबा, राजनीतिक सिद्धान्त की रूपरेखा, प्रकाशक–मयूर पेपर बैक्स नोएडा,संस्करण–2005
- खन्ना बी0एन0एवंअरोड़ा, लिपाक्षी,भारत की विदेश नीति, प्रकाशक–विकास पब्लिशिंगहाउस प्रा0लि0,नई दिल्ली, संस्करण–2010
- पांडे रामकृष्ण,भारतीय प्रजातांत्रिक प्रक्रिया एवं नागरिक असंतोष– पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1994.
- दीपक ओम प्रकाश,आधुनिक लोकतंत्र–अनुवादक– नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1988.
- मेनका गाँधी बनाम भारत सरकार, AIR 1978